उत्तराखण्ड में बेरोजगारी की प्रकृति तथा कारणः- एक अध्ययन

राजीव कुमार*

सार

उत्तराखण्ड को प्रकृति ने अपार प्राकृतिक सौंदर्य से नवाजा है। ऊँचे ऊँचे पहाड़, नदियाँ, तालाब, झीलें, सदाबहार हिम से ढकी हिमालय की शानदार चोटियाँ, अनगिनत जड़ी बूटियाँ, विभिन्न प्रकार की फसलें, फल–फूल साथ ही साथ भगवान शिव का निवास स्थान (कैलाश, हिमालय, बागेश्वर, जागेश्वर, केदारनाथ), माँ सती के अनेकों धाम (पूर्णागिरी और नैना देवी) और उत्तराखण्ड का विस्मित कर देने वाला भू–भाग आधा पहाड़ आधा मैदान फिर भी उत्तराखण्ड के युवा बेरोजगार हैं। अपने गांव, अपनी भूमि छोड़ने को मजबूर हैं। क्योंकि बेरोजगारी भी युवाओं के पलायन का एक अहम कारण बन गयी है। पढ़े–लिखे नौजवान अपना गांव, अपना शहर छोड़कर रोजगार की तलाश में राज्य से दूसरे शहरों में चले जाते हैं या फिर राज्य के बाहर निकल पड़ते हैं। डेढ़ करोड़ की आबादी वाले उत्तराखण्ड में लगभग 10 लाख युवा बेरोजगार घूम रहे हैं। आज से लगभग 19 साल पहले जब राज्य की स्थापना हुई थी तब इन बेरोजगारों की संख्या 2.50 लाख से तीन लाख के बीच थी और हर साल लगभग एक लाख युवा बेरोजगार लिस्ट में शामिल होते जा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इस राज्य में रोजगार की कोई संभावना ही नहीं है। इस राज्य में भी रोजगार की अपार संभावनाएं हैं। उत्तराखण्ड एक ऐसा राज्य बन गया है जहां तीन समस्याएं भयंकर रूप ले रही हैं – शिक्षा, रोजगार, पलायन, खासकर पहाड़ी भू–भाग में, क्योंकि यह तीनों समस्याएं आपस में जुड़ी हुई हैं। इसलिए तीनों ही समस्याओं का समाधान करना अति आवश्यक है। उत्तराखण्ड के पहाड़ों में सबसे ज्यादा बेरोजगारी है और पलायन भी वहीं से हो रहा है। लेकिन अगर देखा जाए तो रोजगार भी यहीं से उपलब्ध हो सकता है क्योंकि उत्तराखण्ड का आधा भू–भाग जो पहाड़ है उसमें एक से एक खूबसूरत व शानदार जगह हैं। कहीं पर पवित्र धाम हैं, तो कहीं पर खूबसूरत वादियाँ, तो कहीं से अद्भुत हिमालय दर्शन होता है और कोई शहर झीलों का शहर (जिला नैनीताल) है तो कहीं आप पैराग्लाइडिंग का आनन्द ले सकते हैं, पर्वतारोहण के साथ–साथ स्नो स्कीइंग (औली) का आनन्द भी आराम से लिया जा सकता है। वर्तमान लेख के अन्तर्गत उत्तराखण्ड में बेरोजगारी की समस्या, प्रकृति तथा कारणों का अध्ययन किया गया है। उत्तराखण्ड में बेरोजगारी के कारणों से सम्बन्धित अध्ययन के लिए लिकर्ट पैमाना विधि का प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्दः बेरोजगारी, शिक्षा–स्तर, उद्यमिता, श्रम–गतिशीलता, रोजगारसृजन,

उत्तराखण्ड राज्य में बेरोजगारी की समस्या

उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था कृषि, वानिकी, उद्योग, खनन एवं पर्यटन पर समान रूप से आधारित है। यहाँ की अर्थव्यवस्था में खनिज सम्पदा जैसे परम्परागत साधनों का महती योगदान है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता तथा राज्य से बाहर रह रहे लोगों द्वारा भेजी गयी राशि का भी सार्थक योगदान है। इसलिए यहाँ की अर्थव्यवस्था को 'मनीआर्डर–अर्थव्यवस्था' की संज्ञा भी दी जाती है। राज्य की आर्थिक–सामाजिक स्थिति पर्वतीय एवं वनाच्छादित भू–भाग के कारण यह राज्य परम्परागत आर्थिक साधनों के मामले में पर्याप्त सीमा तक कमजोर है। यहाँ की विशेष भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अर्थव्यवस्था में विभिन्नता पायी जाती है। जहाँ अन्य राज्यों की अधिकांश जनता कृषि कार्यों में संलग्न है, वहीं उत्तराखण्ड का लगभग 65 प्रतिशत भू–भाग वनों एवं पर्वतों से आच्छादित है जिसके कारण कृषि अत्यन्त श्रम–साध्य कार्य है। अतएव यहाँ की अधिकांश जनता नौकरी पेशे से सम्बन्धित है। सभी लोगों को राज्य में काम नहीं मिल सकता है। अतः लगभग 57 प्रतिशत परिवारों के सदस्य प्रतिवर्ष राज्य से बाहर रोजगार के उद्देश्य से चले जाते हैं। यहाँ के लगभग 90 प्रतिशत शिक्षित अन्य शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं। विशेषकर सुरक्षा सेनाओं तथा अर्द्ध–सैनिक बलों में यहाँ के लोगों की संख्या अच्छी–खासी है जो यहाँ के लोगों के लिए परम्परागत पैतृक पेशा अपनाने जैसा है।

उत्तराखण्ड में रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1.17 प्रतिशत है जबकि जनसंख्या वृद्धि दर 2.25 प्रतिशत वार्षिक है।[1] इस अन्तर के कारण यहाँ स्वाभाविक रूप से बेरोजगारी की दर बढ़ती जा रही है। रोजगार के अभाव के कारण लगभग 64.5 प्रतिशत जनता कृषि कार्यों में मजबूरीवश जुटी हुई है, लेकिन उन्हें कृषि कार्य से पूँजी लागत भी निकालना मुश्किल हो रहा

* शोध छात्र वाणिज्य, राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय काशीपुर जनपदःउधमसिंहनगर (उत्तराखण्ड)

है। उत्तराखण्ड में प्रति–व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र से 20 प्रतिशत, वानिकी से 9 प्रतिशत, खनन कार्यों से 4 प्रतिशत तथा कृषि क्षेत्र से 67 प्रतिशत आय हो रही है।

तालिका 1

उत्तराखण्ड में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के स्रोत

सकल घरेलू उत्पाद का स्रोत	कुल का प्रतिशत
औद्योगिक क्षेत्र	20
वानिकी	9
खनन	4
कृषि क्षेत्र	67
योग	100

Source: Directorate of Economics and Statistics, Government of Uttarakhand Dehradun, 2017

यद्यपि मानव संसाधन, जल सम्पदा तथा पर्यटन की संभावनाओं के क्षेत्र में यह प्रदेश धनी है लेकिन राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी, सरकारी मशीनरी की शिथिलता, प्राकृतिक आपदाओं तथा केन्द्र एवं राज्य में अलग–अलग दलों की सरकारों की विद्यमानता ने प्रदेश के आर्थिक पिछड़ेपन में पर्याप्त योगदान दिया है। रोजगारपरक योजनाओं के मार्ग में रोज–रोज होने वाले धरने–प्रदर्शन, चक्का जाम, आमरण अनशन आदि भी आग में घी का काम कर रहे हैं। प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में लोगों का मुख्य पेशा कृषि ही है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में लोग वनोत्पाद, पशुपालन एवं चाय जैसे उत्पादों पर निर्भर हैं।

उत्तराखण्ड राज्य की विषम भौगोलिक स्थितियाँ, दुरुह पहाड़ियाँ, परिवर्तनशील जलवायु, मिट्टी के विभिन्न प्रकार, जोत की भूमि का कम मात्रा में उपलब्ध होना, लघु एवं सीमान्त जोतों की अधिकता (लगभग तीन–चौथाई जोत एक हेक्टेयर से कम हैं) जनसंख्या का बिखराव (लगभग 89 प्रतिशत गाँवों की जनसंख्या 500 से कम है), भूमि का अत्यधिक क्षरण, कृषि कार्य में आने वाली बाधाएं, धन की कमी, परियोजनाओं की अधिक लागत एवं लम्बी अवधि एवं (दूरस्थ एवं दुर्गम क्षेत्रों में) अलाभकारी पूँजी निवेश आदि कारकों ने राज्य में रोजगारसृजन तथा विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त अधिक जनसंख्या घनत्व, उच्च प्रतिव्यक्ति आय के कारण केन्द्रीय सहायता में कमी, राज्य में उच्च तकनीक का अभाव, कृषि कार्यों एवं भूमि के अन्य उपयोग में उच्च तकनीक का अभाव आदि के कारण उत्पादिता एवं प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरणीय क्षेत्र में ह्रास देखने को मिल रहा है। एक आकलन के अनुसार राज्य से लगभग 97 प्रतिशत परिवारों से लोगों का बाहर पलायन हो रहा है। पलायन की यह मात्रा कुल जनसंख्या का 24 प्रतिशत है। लगभग 41 प्रतिशत लोग निर्धनता के कारण, 16 प्रतिशत लोग बेरोजगारी के कारण, 13 प्रतिशत लोग परिवार द्वारा उत्प्रेरित किये जाने के कारण, 10 प्रतिशत लोग स्थानीय स्तर पर उनकी योग्यतानुसार रोजगार न मिलने के कारण तथा 20 प्रतिशत लोग अन्य कारणों से राज्य से पलायन कर रहे हैं।

तालिका 2

उत्तराखण्ड में पलायन के कारणों की स्थिति

पलायन का कारण	कुल का प्रतिशत
निर्धनता	41
बेरोजगारी	16
परिवार द्वारा उत्प्रेरण	13
स्थानीय स्तर पर योग्यतानुसार कार्य की अनुपलब्धता	10
अन्य कारण	20
योग	100

Source: Directorate of Economics and Statistics, Government of Uttarakhand Dehradun, 2017

उत्तराखण्ड राज्य में बेरोजगारी के कारण

उत्तराखण्ड में जनसंख्या वृद्धि के साथ ही साथ बेरोजगारी की दर में भी लगातार वृद्धि होती जा रही है। मात्र 14 प्रतिशत भू–भाग ही कृषि–योग्य है। उस पर पर्वतीय क्षेत्र की कृषि वर्षा पर निर्भर करती है। प्राकृतिक आपदाओं के कारण कई बार भू–क्षरण, अति वर्षा आदि के कुप्रभाव के कारण कृषि बिल्कुल चौपट हो जाती है। राज्य में बेरोजगारी के लिए निम्न कारणों को मुख्यतः जिम्मेदार माना जा सकता हैः–

1. हस्तकला एवं लघु उद्यमों का पतन

आधुनिक युग विज्ञान एवं तकनीक का युग है। उद्योगों में भी यन्त्रीकरण, स्वचालन तथा प्रौद्योगिकीय प्रगति के कारण हस्तशिल्प एवं लघु उद्यमों की अवनति हुई है। वृहद्स्तरीय उद्योगों के सम्मुख लघुस्तरीय उद्योग प्रतिस्पर्द्धा में टिक नहीं पा रहे हैं जिसका दुश्परिणाम यह हो रहा है कि अधिकांश लघु उपक्रम या तो बन्द हो चुके हैं अथवा बन्दी के कगार पर पहुँच गए हैं। श्रम प्रधान उद्योग होने के कारण इनके बन्द होने से बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार हो रहे हैं। बड़े कारखानों में अत्याधुनिक मशीनों द्वारा विनिर्मित उत्पाद उच्च गुणवत्तायुक्त होते हैं जिस कारण उपभोक्ता इन्हीं उत्पादों को अधिक पसन्द करते हैं। यही कारण है कि हस्तनिर्मित एवं कलात्मक वस्तुओं की माँग कम होती जा रही है। अतः स्पष्ट है कि बेरोजगारी बढ़ाने में हस्तकला तथा लघु उद्योगों की अवनति भी कारण रहा है।

2. रोजगारपरक कार्यक्रमों का शिथिल क्रियान्वयन

प्रदेश में 1 अप्रैल 1999 से पूर्व चल रहे स्व–रोजगारपरक तथा सम्बद्ध कार्यक्रमों जैसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राईसेम), ग्रामीण क्षेत्र महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम, दस लाख कुँए योजना, गंगा कल्याण योजना तथा सिट्रा (SITR) को समेकित कर दिया गया है और अब इनमें से कोई भी कार्यक्रम अलग से नहीं चल रहा है। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना का गठन करते समय पूर्व में प्रचलित स्वरोजगार कार्यक्रमों की शक्तियों एवं सफलताओं का पूरा ध्यान रखा गया है ताकि स्वरोजगार के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या पर एकमुश्त प्रहार कर ग्रामीण निर्धनों का आर्थिक उन्नयन सुनिश्चित किया जा सके।

1 अप्रैल 1999 से प्रारम्भ की गई स्वर्ण–जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना तथा जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के निष्पादन परिणाम परिलक्षित करते हैं कि इन योजनाओं में निर्धारित भौतिक लक्ष्य पर्याप्त ऊँचे रहे हैं, जबकि इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपलब्ध कराये गये वित्तीय संसाधन अत्यन्त अल्प रहे। वित्तीय संसाधनों की मात्रा कम होने के कारण भी निर्धन इन योजनाओं की ओर आकर्षित नहीं हो पा रहे हैं। इन योजनाओं के शिथिल क्रियान्वयन का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है– पात्र व्यक्तियों का चयन न हो पाना। रोजगारपरक कार्यक्रमों का लाभ केवल वे ही बी0पी0एल0 परिवार उठा सकते हैं जिनका चयन एवं चिन्हीकरण ग्राम सभा द्वारा किया गया हो। आरक्षित वर्गों के प्रति अभी भी ग्रामीण समाज में विद्वेष की भावना व्याप्त है जिस कारण पात्र व्यक्तियों का चयन नहीं हो पाता है। रोजगारपरक योजनाओं के शिथिल क्रियान्वयन में सही योजना का चयन न हो पाना भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। किसी योजना में सीमित कार्य–दिवसों के लिए रोजगार की गारण्टी दी गई है तो किसी में उपादान स्वीकृत है तो किसी में स्व–रोजगारसृजन की बात कही गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि महानगरों में पैदा हुए तथा पले बढ़े हुए योजनाकार ग्रामीण निर्धनता एवं समाज से तनिक भी परिचित नहीं हैं अन्यथा सभी योजनाएँ विगत 38 वर्षों में असफल न हुई होतीं।

रोजगारपरक योजनाओं के शिथिल क्रियान्वयन में स्थानीय परिस्थितियों के आकलन का अभाव भी एक प्रमुख कारण है। स्थानीय परिस्थितियों में जनसंख्या का आकार एवं संरचना, जनसंख्या का घनत्व, कृषि एवं उद्योगों की स्थिति तथा विकास, ढाँचागत सुविधाओं की उपलब्धता, निर्धनों का कुल जनसंख्या में प्रतिशत, निर्धनता की गहनता, सूक्ष्म उपक्रमों की संभावनाएँ, कच्ची सामग्री की उपलब्धता, विनिर्मित उत्पाद की स्थानीय खपत, भूमि की उर्वरा–शक्ति, भू–स्वामित्व की स्थिति, संसाधनों का वितरण, नागरिकों का शैक्षिक–स्तर तथा प्रबन्धकीय एवं तकनीकी योग्यता, विपणन सुविधाएँ आदि सम्मिलित हैं। इन घटकों का मूल्यांकन करने के लिए सम्बन्धित क्षेत्र के विशेषज्ञों के अभाव के कारण आर्थिक क्रियाकलापों का मूल्यांकन नहीं हो पाता जिसके परिणामस्वरूप रोजगार सृजन प्रभावित होता है जो बेरोजगारी के परिमाण में वृद्धि कर रहा है। सभी रोजगारपरक कार्यक्रम जिला ग्राम्य विकास अभिकरण, जिला परिषद तथा विकासखण्ड कार्यालय के माध्यम से लागू किये जाते हैं। इन सभी कार्यालयों में वाणिज्यिक एवं आर्थिक क्रियाकलापों से सम्बन्धित विशेषज्ञों एवं तकनीकी स्टाफ की कमी होती है जिस कारण रोजगारपरक योजनाओं के क्रियान्वयन में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। नौकरशाही का प्रभुत्व, अविवेकपूर्ण मापदण्ड, ग्राम का अहितकारी शक्ति–ढाँचा तथा रोजगारपरक कार्यक्रमों के मध्य समन्वय के अभाव का भी इन कार्यक्रमों के निष्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप बेरोजगारी के स्तर में कमी के स्थान पर वृद्धि हुई है।

3. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि

प्रदेश में बेरोजगारी में वृद्धि का मुख्य कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है। उत्तराखण्ड में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 2.25

प्रतिशत है जबकि रोजगार वृद्धि की दर मात्र 1.17 प्रतिशत है। इस प्रकार बेरोजगारों की संख्या में प्रतिवर्ष 1.08 प्रतिशत की वृद्धि होती जा रही है। रोजगार अवसरों का सृजन तभी होता है जब कृषि, उद्योग, पर्यटन आदि का विकास एवं विस्तार हो। औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा हब बनने, नागरिक सुविधाओं के विकास एवं विस्तार तथा अन्य अनेक कारणों से कृषि–योग्य भूमि का क्षेत्रफल निरन्तर घटता जा रहा है, जिस कारण कृषि में रोजगार की संभावनाएं प्रायः समाप्त हो गई हैं। मण्डल में औद्योगीकरण मात्र दो जनपदों तक ही सिमट कर रह गया है। इन उद्योगों में भी सरकार की लाख कोशिशों के बावजूद स्थानीय लोगों को सीमित संख्या में ही रोजगार प्राप्त हो रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्थानीय लोग राजनीतिक दलों के बहकावे में आकर कारखानों में आए दिन अशान्ति उत्पन्न करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उद्यमी ठेकेदारों के माध्यम से बाहरी श्रमिकों को ही काम पर रख रहे हैं। इन उद्योगों में काम चाहने वाले अधिकांश श्रमिक अकुशल हैं। उन्हें अत्यन्त कम मजदूरी की पेशकश की जाती है जबकि औद्योगीकृत स्थानों पर आवास उच्च किराये पर ही उपलब्ध हो पाते हैं। इस प्रकार अल्प मजदूरी में श्रमिकों को अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण करना कठिन हो जाता है। केन्द्र सरकार द्वारा पूर्व में घोषित औद्योगिक पैकेज की अवधि सन् 2013 से घटाकर सन् 2010 कर दिये जाने के कारण भी रोजगार पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। यदि उक्त औद्योगिक पैकेज लम्बी अवधि के लिए स्वीकृत कर दिया जाता तो इससे आकर्षित होकर बडी संख्या में उद्यमी प्रदेश में अपने उद्योग स्थापित करते जिससे रोजगार स्तर में सुधार होता ।

4. दोषपूर्ण नियोजन

भारत अपने आर्थिक विकास के लिए नियोजन का सहारा लेता आ रहा है। देश ने सन् 1951 से नियोजन की पद्धति को अपनाया है। रोजगार की दृष्टि से भारतीय नियोजन अत्यधिक दोषपूर्ण रहा है। नियोजन काल के प्रारम्भिक वर्षों में रोजगारसृजन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में योजनाकारों की यह धारणा थी कि आर्थिक विकास के साथ ही साथ रोजगार अवसरों में वृद्धि होती जायेगी। देश में तीव्र आर्थिक विकास के लिए वृहद्स्तरीय पूँजी प्रधान एवं उच्च प्रौद्योगिकी एवं तकनीकयुक्त उद्योगों को अनिवार्य समझा गया। इसमें सन्देह नहीं कि वृहदस्तरीय उद्योग औद्योगीकरण को मजबूत आधार प्रदान करते हैं परन्तु ये कम परिमाण में ही रोजगार उपलब्ध करा पाते हैं। देश में भारतीय परम्पराओं, दशाओं एवं वातावरण के अनुकूल देशी तकनीक का उपयोग कर सकने वाले उद्योगों की स्थापना नहीं की गई अन्यथा रोजगार सम्भावनाओं में पर्याप्त वृद्धि होती। सन् 1978 से रोजगारपरक कार्यक्रमों को लागू किया गया परन्तु पर्याप्त जन–जागरूकता की कमी, प्रशिक्षण एवं विपणन के अभाव, सरकारी मशीनरी की शिथिलता आदि अनेक कारणों से ये रोजगारपरक कार्यक्रम अपेक्षित परिणाम परिलक्षित न कर सके। एक के बाद एक असफलता ने सरकार को कार्यक्रमों के नाम परिवर्तन एवं संविलीनीकरण के लिए बाध्य कर दिया। 1 अप्रैल 1999 को स्वर्ण जयन्ती ग्राम्य स्वरोजगार योजना का शुभारम्भ किया गया जिसमें 'रोजगार' के स्थान पर 'स्व–रोजगार' पर ध्यान केन्द्रित किया गया। उक्त योजना ऋण–सह–अनुदान योजना है। परन्तु इस योजना ने भी अपेक्षित सफलता नहीं पाई है। देश में छठी योजना से उद्देश्य के रूप में रोजगार वृद्धि के संकल्प को दोहराया जाता रहा है। परन्तु व्यवहार में इतनी उदासीनता रही कि कई योजना प्रारूपों में देश में बेरोजगारी के सम्बन्ध में उचित आँकड़े भी नहीं दिये जा सके। उत्तराखण्ड में नियोजन की स्थिति और भी कमजोर है। नवोदित राज्य होने के कारण विगत 18 वर्षों में अभी तक अधिकारियों एवं कर्मचारियों का टोटा पड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में नियोजन कार्य कैसे सुदृढ़ हो सकता है। केन्द्र सरकार द्वारा घोषित एवं प्रायोजित योजनाएँ यहाँ पर भी लागू की जा रही हैं परन्तु बेरोजगारी दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। सार्वभौम रोजगार योजना, रोजगार गारण्टी योजना तथा मनरेगा बेरोजगारी की समस्या को थोड़ा–बहुत हल कर पायी हैं परन्तु इसके बावजूद बेरोजगारों, विशेषकर शिक्षित बेरोजगारों, की संख्या में बेतहाशा वृद्धि होती जा रही है। नियोजन को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि तथ्यों, सूचनाओं एवं समंक संग्रहण का आधार सुदृढ़ हो तथा संकलनकर्त्ता सेविवर्ग न केवल शिक्षित हों अपितु प्रशिक्षित एवं दक्ष भी हों।

5. रोजगारपरक शिक्षा की कमी

प्रदेश में जहाँ एक ओर शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने का मुख्य कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली है वहीं दूसरी ओर व्यवसाय–प्रधान शिक्षा की पर्याप्त कमी है। प्रदेश का कृषि क्षेत्र पहले से ही अल्प–रोजगारी एवं प्रच्छन्न बेरोजगारी से ग्रसित है। उद्योगों में भी केवल उन्हीं व्यक्तियों को काम पर रखा जाता है जो उद्योग–सम्बद्ध गतिविधियों में पारगंत हों। उद्योगों में इलैक्ट्रीशियन, टर्नर, फिटर, वेल्डर, मशीनिस्ट, मोटर मैकेनिक, कैमिस्ट, फार्मेसिस्ट आदि के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इन कृत्यों का प्रशिक्षण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, बहुधन्धी संस्थानों आदि के माध्यम से दिया जाता है। प्रदेश में उक्त संस्थान अत्यन्त सीमित संख्या में हैं। वैसे भी ये संस्थान आम जनता की पहुँच से काफी दूर हैं। इनमें प्रथम तो प्रवेश प्रक्रिया बड़ी कठिन है और यदि प्रवेश हो भी जाता है तो निर्धन छात्र/छात्राएं धनाभाव के कारण प्रवेश से वचिंत हो जाते हैं क्योंकि उन्हें रहने के लिए मंहगे आवास किराये पर लेने पड़ते हैं जो उनकी क्षमता से बाहर की बात है। यदि घर के आस–पास लघु औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान खुल जायें तो न केवल निर्धन छात्र अपितु महिलाएं भी

विविध प्रकार के धन्धों का प्रशिक्षण लेकर कुशल अथवा अर्द्ध–कुशल श्रमिक के रूप में कार्य कर सकती हैं। ऐसी स्थिति में प्रशिक्षित लोग स्व–रोजगार भी अपना सकेंगे।

6. बाहरी व्यक्तियों का आगमन

उत्तराखण्ड की जलवायु, परिवहन सुविधाएँ तथा भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि बाहरी व्यक्ति आकर्षित हो चले आते हैं और फिर काम–धन्धे के साथ ही साथ यहीं पर बस जाते हैं। प्रदेश की उत्तर–पूर्व सीमा नेपाल से जुड़ी है। बड़ी संख्या में नेपाली मजदूर सुदूर स्थानों पर कार्य करते मिल जायेंगे। बांग्लादेशी शरणार्थी भी बड़ी संख्या में यहीं पर आकर बस गए हैं। प्रदेश की सीमा से लगे उत्तर प्रदेश के ठाकुरद्वारा, अलीगंज, रोशनपुर, रामपुर, स्वार, बरेली, पीलीभीत, मुरादाबाद आदि स्थानों से कुशल, अर्द्ध–कुशल एवं अकुशल श्रमिक जिनमें दिहाड़ी मजदूर, राज–मिस्त्री, प्लम्बर, कारपेन्टर, वैल्डर, पेन्टर आदि प्रमुख हैं, यहाँ पर काम करने आते हैं। इनमें से कुछ तो रोज बसों एवं रेलगाड़ियों अथवा अन्य सवारी साधनों से अपने घर लौट जाते हैं जबकि कुछ ने यहीं पर स्थायी अथवा अस्थायी आवास बना लिया है। इन सबका दुष्प्रभाव यह है कि स्थानीय लोगों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। पर्वतीय मूल की सवर्ण जातियाँ श्रमिक के रूप में अपने क्षेत्र में काम करना अपनी शान के खिलाफ समझती हैं जबकि दिल्ली जैसे शहरों में उन्हें होटल–ढाबों में बर्तनों की सफाई जैसे कार्यों से भी परहेज नहीं है। जब पेट को भूख लगती है तो व्यक्ति कुछ भी कार्य करने को तैयार हो जाता है। इसके अतिरिक्त मैदानी क्षेत्रों में कुछ श्रम ठेकेदार उद्योगों में श्रमिकों की आपूर्ति करते हैं। ये श्रमिक उत्तराखण्ड से बाहरी क्षेत्रों के होते हैं। जिनमें पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के श्रमिकों का बाहुल्य रहता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के ठीक बाद सरकार द्वारा बड़ी संख्या में पंजाब से लाकर लोगों को यहाँ बसाया गया था ताकि प्रदेश का तराई क्षेत्र आबाद हो सके। बाहरी व्यक्तियों के आगमन का दुष्परिणाम अब बेरोजगारी स्तर में वृद्धि के रूप में प्रकट हो रहा है।

7. पूँजी निर्माण की निम्न दर

पूँजी–निर्माण आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। आर्थिक विकास पर रोजगारसृजन निर्भर करता है। पूँजी–निर्माण से आशय भौतिक उत्पादन के साधनों के स्टॉक के पुनः निर्माण से है। यदि समय के साथ पूँजी–स्टॉक में वृद्धि हो जाती है तो उसे पूँजी–निर्माण कहते हैं। वर्तमान उत्पादन का उपभोग न करके उसके जिस भाग को मशीनों, औजारों आदि के उत्पादन में लगाया जाता है, उसे पूँजी–निर्माण कहते हैं। **प्रो0 रागनर नर्क्से** के अनुसार, "पूँजी–निर्माण का अर्थ यह है कि समाज अपनी समस्त वर्तमान उत्पादक क्रिया को वर्तमान उपभोग में व्यय न करके, उसके एक भाग को पूँजीगत माल, उपकरण व यन्त्र, मशीन, परिवहन सुविधाएँ, प्लाण्ट व साज–सज्जा के निर्माण पर व्यय करता है– यह वास्तविक पूँजी के विभिन्न रूप हैं जो उत्पादक प्रयासों की कार्य क्षमता को अधिक बढ़ा देते हैं"। **नर्क्से** की यह परिभाषा केवल भौतिक पूँजी के निर्माण से सम्बद्ध है और यह मानव पूँजी की उपेक्षा करती है। **डॉ0 एच0 डब्ल्यू0 सिंगर** के अनुसार, "पूँजी निर्माण में भौतिक एवं अभौतिक वस्तुएँ दोनों ही सम्मिलित होनी चाहिए"। **प्रो0 साइमन कुजनेट्स** ने भी पूँजी निर्माण में भौतिक एवं अभौतिक दोनों ही प्रकार की पूँजी को सम्मिलित किया है। किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास प्रति व्यक्ति पूँजी की वृद्धि से सम्बन्धित है। आर्थिक विकास में पूँजी का विशेष महत्व है। पूँजी उत्पत्ति का एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। आर्थिक दृष्टि से पूँजीगत माल में वृद्धि होना ही आर्थिक विकास में सम्मिलित किया जाता है। पूँजी की उपलब्धता आर्थिक विकास की अनुपस्थिति में सम्भव नहीं है। परन्तु यह भी अनुभव किया गया है कि "संवृद्धि के लिए पूँजी ही एकमात्र आवश्यकता नहीं है, यदि पूँजी उपलब्ध करा भी दी जाती है तो उसका जब तक लाभप्रद कार्यों में उपयोग नहीं होता वह व्यर्थ ही रहेगी।[2] पूँजी की उपलब्धता के साथ ही साथ उसका उपभोग भी आवश्यक है।

कोलिन क्लार्क के अनुसार, "पूँजीगत वस्तुएँ पुनः उत्पादन योग्य धन हैं जिनका उत्पादन कार्यों के लिए उपभोग होता है"।[3] प्रो0 रागनर नर्क्से के अनुसार, "पूँजी–निर्माण का अर्थ यह है कि समाज अपनी वर्तमान उत्पादन–क्षमता को पूर्णरूपेण उपभोग एवं तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं लगाता, बल्कि उसके एक भाग को पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण में लगा देता है जिसमें संयन्त्र व उपकरण, मशीन, परिवहन सुविधाएं, प्लाण्ट व साज–सामान सम्मिलित हैं।"[4] इस प्रकार विनियोग करने से पूँजीगत साधनों में जो वृद्धि होती है, उसे पूँजी–निर्माण माना जाता है। व्यापक अर्थ में पूँजी निर्माण को दीर्घकालीन आर्थिक विकास से सम्बन्धित किया गया है। भौतिक एवं व्यक्तिगत पूँजी को भी पूँजी–निर्माण में सम्मिलित किया जाता है। पूँजी–निर्माण में केवल चालू उत्पादन ही नहीं अपितु शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि को भी सम्मिलित करते हैं जिससे श्रमिक की उत्पादिता एवं कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और समाज के आर्थिक कल्याण का भी विस्तार हो जाता है।

उत्तराखण्ड अभी भी देश का आर्थिक रूप से पिछड़ा राज्य है। यहाँ पर प्रति व्यक्ति आय में तो सार्थक वृद्धि हुई है परन्तु पूँजी–निर्माण की दर पर्याप्त कम है जिसका मुख्य कारण है– प्रदर्शनकारी प्रभाव, जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर, उपभोक्ता व्यय में सार्थक वृद्धि, उद्यमीय कुशलता की कमी, निम्न उत्पादिता, आधारभूत ढाँचे की अपर्याप्तता, असन्तुलित

विकास, सीमित निवेश बाजार तथा वित्तीय क्रियाओं की शिथिलता।

8. श्रम–गतिशीलता में कमी

कृषि जोतों के लगातार घटते आकार के कारण कृषि उत्पादिता में कमी, बढ़ते मशीनीकरण तथा आर्थिक जोत वाले कृषकों का लघु एवं सीमान्त कृषकों में रूपान्तरण ने कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी को बढ़ाया है। इन सबका परिणाम यह है कि खेतिहर श्रमिक गाँवों से पलायन करने को बाध्य हैं। इस प्रकार खेतिहर श्रमिकों द्वारा गाँव से अर्द्ध–शहरी एवं शहरी क्षेत्रों, कृषि से उद्योग धन्धों, सेवाओं एवं संनिर्माण कार्यों तथा एक कृत्य को छोड़कर दूसरे कृत्य में नियोजित होना ही श्रम गतिशीलता कहलाता है। राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण संगठन के 25वें दौर में खेतिहर श्रमिकों में गतिशीलता के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि उड़ीसा राज्य में सर्वाधिक 60 प्रतिशत खेतिहर श्रमिक (पुरूष) और 45 प्रतिशत लघु कृषक (पुरूष) कार्य करने के लिए दूसरे गाँवों अथवा नजदीक के शहर में जाने को इच्छुक थे। असम, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र में सबसे कम संख्या में लघु कृषकों (12 से 13 प्रतिशत) एवं कृषि श्रमिकों (16 से 22 प्रतिशत) ने ग्राम से बाहर जाकर कार्य करने की इच्छा प्रकट की। इसी प्रकार सभी श्रमिकों में सर्वाधिक राजस्थान राज्य (6.4 प्रतिशत) तथा सबसे कम असम, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश राज्य (2 से 4 प्रतिशत) के श्रमिकों ने बाहर जाकर कार्य करने की इच्छा प्रकट की। स्पष्ट है कि देश के श्रमिकों में गतिशीलता का स्तर पर्याप्त न्यून है जिसका इनकी आय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। केवल खेतिहर श्रमिकों में गतिशीलता का उच्च–स्तर पाया जाता है। भीषण बेरोजगारी एवं निर्धनता की समस्या से ग्रस्त खेतिहर श्रमिकों में गतिशीलता अधिक दिखाई पड़ती है क्योंकि अच्छे रोजगार अवसर और उच्च मजदूरी इन श्रमिकों की गतिशीलता में अभिवृद्धि करते हैं। आर्थिक आवश्यकता, विकास में अन्तर्क्षेत्रीय विषमता, विभिन्न स्तरों पर सामाजिक एवं आर्थिक विषमता तथा संविधान के अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत प्रदत्त भारत के किसी भी क्षेत्र में जाकर अपनी पसंद का व्यवसाय अथवा काम–धन्धा प्रारम्भ किये जाने की स्वतन्त्रता ने खेतिहर श्रम गतिशीलता को बढ़ावा दिया है।

उत्तराखण्ड की स्थितियाँ श्रम गतिशीलता के दृष्टिकोण से थोड़ा भिन्न हैं। सुदूर पर्वतीय क्षेत्रों के बेरोजगार मैदानी क्षेत्रों की ओर सामान्यतः इसलिए रूख नहीं करते क्योंकि –

(i) मैदानी शहरी एवं अर्द्धशहरी क्षेत्रों में मकान ऊँचे किराये पर मिलते हैं जो अल्प आय वर्ग के बूते से बाहर की बात है।

(ii) पर्वतीय ग्रामीण परिवेष के लोग स्वयं को मैदानी परिवेष में ढाल पाने में दिक्कत महसूस करते हैं क्योंकि दोनों संस्कृतियों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों, खान–पान, तीज–त्यौहारों, भाषा आदि में पर्याप्त विभिन्नताएँ हैं ।

(iii) सुदूरवर्ती क्षेत्रों के लोग अपनी खेती–बाड़ी तथा पशुपालन के साथ ही साथ अपने बुजुर्ग पारिवारिक सदस्यों को छोड़ना नहीं चाहते जिनकी देखभाल इन्हीं कमाऊ तथा कार्यशील सदस्यों पर निर्भर है ।

(iv) सड़कों की खराब स्थिति, प्राकृतिक आपदाएं तथा परिवहन साधनों की अपर्याप्तता भी गतिशीलता में बाधक हैं ।

उपर्युक्त कारणों का सामूहिक प्रभाव यह पड़ता है कि औद्योगीकृत मैदानी क्षेत्रों में रोजगार अवसरों की सुलभता के बावजूद सुदूरवर्ती पर्वतीय क्षेत्रों के लोग इसका लाभ नहीं उठा पाते जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

9. उद्यमीय क्षमता की कमी

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में उद्यमीय क्षमता का निर्णायक एवं महत्वपूर्ण स्थान होता है। उद्यमीय प्रवृत्तियों एवं कार्यों के कारण ही देश के संसाधनों व आय सम्पदा की उपलब्धता, संसाधनों को उत्पादक कार्यों में लगाना, नई तकनीक, नई प्रविधियों एवं नये दृष्टिकोणों को राष्ट्र हित में काम में लेना एवं अन्यानेक साहसिक निर्णयों द्वारा सृजनशीलता एवं क्रियात्मकता का निर्माण किया जाना सम्भव होता है। उद्यमियों व उद्यमिता की किसी भी भूमिका द्वारा मृत या निष्क्रिय सामाजिक व आर्थिक वातावरण को संचेतन व सक्रियता की ओर उन्मुख किया जा सकता है। कोई भी व्यवसाय व उद्योग स्वतः ही प्रारम्भ नहीं होते हैं और न ही उनका संचालन व विकास स्वतः ही सम्भव है। प्रत्येक उपक्रम चाहे छोटा हो या बड़ा, के विकास की क्रमागत अवस्थाओं की पृष्टभूमि में उसके स्वामी या प्रवर्तक या उद्यमी के अथक प्रयासों व योगदानों की एक लम्बी कहानी होती है। व्यवसाय में विभिन्न अनिश्चिताओं व जोखिमों को वहन करना, नवीन विचारों का आविर्भाव करना, व्यावसायिक सुअवसरों की खोज करना, व्यावसायिक चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना निश्चित रूप से साहसिक या उद्यमीय क्षमताओं पर निर्भर करता है। उल्लेखनीय है कि **थॉमस वाटसन, एण्ड्रयू कारनेगी, क्रिसलर मोरगेन, हेनरी फोर्ड, रोक फेलर, भारत के जे0 आर0 डी0 टाटा, जी0 डी0 बिड़ला, किर्लोस्कर, आदित्य विक्रम बिडला एवं धीरू भाई अम्बानी** आदि उद्योगपति हुए हैं जिन्होंने अपने संघर्ष, श्रम साध्य लगन व नवाचारी योगदानों से उद्योग जगत को न केवल नई दिशाएँ प्रदान की हैं अपितु 'उद्यमिता' शब्द की सार्थकता व प्रामाणिकता भी स्वतः प्रकट की है। व्यावसायिक जटिलताओं एवं नये सामाजिक व आर्थिक मूल्यों के कारण साहसिक योग्यताओं व कौशल का महत्व बहुत बढ़ गया है। उद्यमीय क्षमता विकसित एवं अर्द्ध–विकसित सभी देशों के विकास का मुख्य आधार बनती जा रही है। संयुक्त

राज्य अमेरिका, रूस, जापान, जर्मनी व फ्रांस आदि विकसित देशों के विकास की प्रत्येक अवस्था उद्यमियों के अनूठे योगदानों से ही प्रारम्भ होती है।

उत्तराखण्ड का युवा–वर्ग शिक्षा पूरी करने के बाद नौकरी की चाह रखता है। उसमें साहसिक या स्व–रोजगार भावना का अभाव पाया जाता है। व्यावसायिक विश्व जोखिमों, अनिश्चितताओं एवं अपूर्णताओं से परिपूर्ण है। विभिन्न सीमाकारी घटकों के कारण उद्यमी प्रदेश के सुदूरवर्ती स्थानों पर उद्योग स्थापित करना पसन्द नहीं करते हैं। अधिकांश उद्योग ऐसे महत्वपूर्ण स्थानों पर स्थापित किये गए हैं जो कम से कम सड़क मार्ग से जुड़े हों। प्रदेश की पुरूष आबादी का झुकाव सदैव सशस्त्र सेवाओं की ओर रहता है। अवकाश ग्रहण के बाद वे अपने पैतृक स्थानों पर आ जाते हैं तथा अपना शेष जीवन आराम से गुजारते हैं। प्रदेश में स्थानीय लोगों के लिए ऐसा वातावरण उपलब्ध नहीं है कि वे कोई काम–धन्धा शुरू करने का कोई जोखिम उठायें। प्रदेश में 'उद्यमिता विकास कार्यक्रम' प्रचालन की भी कोई सुदृढ़ व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रदेश में उद्यमीय क्षमता की कमी के कारण व्यावसायिक क्रियाकलाप कुप्रभावित हुए हैं जिसका परिणाम यह रहा कि वांछित मात्रा में रोजगार सृजन न हो सका और बेरोजगारी का स्तर उत्तरोत्तर बढ़ता गया ।

सर्वेक्षण परिणाम

उत्तराखण्ड में बेरोजगारी के कारणों से सम्बन्धित लिकर्ट पैमाना विधि द्वारा प्राप्त औसत अंक तथा प्रमाप विचलन निम्न तालिका में दिए गए हैं:

तालिका 3

उत्तराखण्ड में बेरोजगारी के कारणों सम्बन्धी प्राप्त औसत अंक एवं प्रमाप विचलन

क्रम सं0	बेरोजगारी का कारण	माध्य अंक	प्रमाप विचलन
1.	रोजगारसृजन की तुलना में जनंसख्या में तीव्र वृद्धि	3.84	0.32
2.	रोजगारपरक शिक्षा की कमी	4.06	0.27
3.	हस्तकला एवं लघु उद्यमों का पतन	4.36	0.46
4.	दोषपूर्ण नियोजन	3.38	0.39
5.	रोजगारपरक कार्यक्रमों का शिथिल क्रियान्वयन	4.62	0.78
6.	बाहरी व्यक्तियों का आगमन	4.18	0.65
7.	श्रम गतिशीलता में कमी	2.46	0.47
8.	पूँजी निर्माण की निम्न दर	4.82	0.53
9.	उद्यमिता की कमी	3.92	0.35

स्रोतः– सर्वेक्षण परिणामों पर आधारित

तालिका से स्पष्ट है कि प्रत्यार्थियों में उपर्युक्त कारणों के सम्बन्ध में या तो दृढ़ सहमति थी अथवा असहमति थी। सभी प्रत्यार्थी प्रदेश में बेरोजगारी के उपर्युक्त कारणों से भली प्रकार परिचित थे। बहुत ही कम संख्या में प्रत्यार्थी किसी कारण से असहमत थे। अंकों के मानक विचलन इस बात के सूचक हैं कि प्रत्यार्थियों की राय में बहुत ही कम अन्तर था। स्पष्ट है कि जीवन–स्तर, आय एवं रोजगारपरक कार्यक्रमों के सम्बन्ध में प्रत्यार्थियों को अच्छी खासी जानकारी है।

उत्तराखण्ड में बेरोजगारी की प्रकृति

उत्तराखण्ड भारत का एक अल्प–विकसित परन्तु विकासमान राज्य है। इस कारण यहाँ बेरोजगारी की प्रकृति उन्नत राज्यों से पर्याप्त भिन्नता लिये हुए है। लॉर्ड कीन्स के अनुसार औद्योगिक देशों में बेरोजगारी का मूल कारण प्रभावपूर्ण माँग का कम होना है, जिससे अस्थाई व चक्रीय प्रकृति की बेरोजगारी उत्पन्न होती है। लेकिन इसके विपरीत भारत जैसे अल्प–विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी, पूँजी या अन्य अनुपूरक घटकों के अभाव का परिणाम मात्र है। इस दृष्टि से पिछड़े राष्ट्रों एवं राज्यों में बेरोजगारी के समाधान के लिए पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक को बढ़ाना अनिवार्य हो जाता है ताकि उत्पादन की नई इकाइयाँ स्थापित की जा सकें। इसका प्रभाव यह होगा कि अतिरिक्त नौकरियों के स्थापित होने पर अतिरिक्त श्रम–शक्ति को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराया जा सकेगा। बेरोजगारी के विभिन्न कारणों का विश्लेषण करने के उपरान्त

यह तथ्य प्रकाश में आया कि उत्तराखण्ड में बेरोजगारी की प्रकृति अथवा संरचना निम्नानुसार हैः–

(अ) नगरीय क्षेत्रों में बेरोजगारी

उत्तराखण्ड में नगरीय क्षेत्रों की बेरोजगारी के भी दो रूप हैं–(1) औद्योगिक श्रमिकों में बेरोजगारी तथा (2) शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी। औद्योगिक बेरोजगारी के मुख्य कारण हैं– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि होना, नगरीकरण में वृद्धि के कारण ग्रामीण जनसंख्या का शहरों में प्रवास करना ताकि रोजगार के साथ–साथ नागरिक सुविधाओं का लाभ लिया जा सके, औद्योगिक श्रम में होने वाली वृद्धि की तुलना में उद्योगों का अपेक्षाकृत कम विस्तार हो पाना। बाहरी प्रदेशों से भी बड़ी संख्या में लोग मण्डल के औद्योगीकृत शहरों में आकर बस गए हैं जिस कारण यहाँ रोजगार अवसरों पर दबाव बढ़ा है जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय लोगों के बेरोजगारी स्तर में वृद्धि हुई है। बाहरी व्यक्तियों ने स्थानीय लोगों के पेट पर लात मारी है। इसके अतिरिक्त नगरीय क्षेत्र में बेरोजगारी का द्वितीय स्वरूप है– शिक्षित–मध्यम वर्ग में बेरोजगारी का पाया जाना। यह देश की शिक्षा की बिडम्बना ही है कि अकुशल श्रमिक कभी खाली नहीं मिलते जबकि हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट या उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को कोई काम नहीं मिलता क्योंकि ये सब शारीरिक श्रमपरक कार्य करना ही नहीं चाहते। इन्हें तो **'व्हाईट कॉलर जॉब'** ही चाहिए। ये शहरी शिक्षित शारीरिक श्रम से दूर भागते हैं। इस शिक्षित वर्ग में समाज को जागरूक बनाने के लिए पर्याप्त नेतृत्व क्षमता अवश्य होती है। शिक्षित वर्ग की बेरोजगारी समाज के लिए घातक होती है क्योंकि इस वर्ग का असन्तोष समाज में क्रान्ति भड़का सकता है जो सरकार के लिए सरदर्द बन जाता है। इसलिए यह प्रदेश एवं सरकार के हित में है कि शिक्षित बेरोजगारी को पनपने का अवसर ही न दिया जाए। किसी ने ठीक ही अर्ज किया है, "खाली दिमाग शैतान का घर होता है।"

(ब) ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी

उत्तराखण्ड की 62.37 प्रतिशत जनसंख्या (जनगणना 2011) ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। पर्वतीय राज्य होने के कारण गाँव भी दूर–दूर बिखरी हुई स्थिति में हैं तथा मुख्य सड़क मार्ग से काफी दूरी पर हैं। विषम भौगोलिक स्थिति के कारण ज्यादातर सम्पर्क मार्ग भी ऊबड़–खाबड़ स्थिति में हैं। प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त बेरोजगारी के दो स्वरूप है–(1) मौसमी बेरोजगारी तथा (2) निरन्तर अल्प–रोजगार या प्रच्छन्न बेरोजगारी। मण्डल का तराई क्षेत्र कृषि की दृष्टि से समृद्ध क्षेत्र है जहाँ पर धान, गन्ना, गेहूँ जैसी फसलें व्यापक स्तर पर उगाई जाती हैं। परन्तु फसल की बुवाई एवं कटाई के मध्य लम्बे समय तक श्रमिकों को काम नहीं मिल पाता है जिस कारण मौसमी बेरोजगारी उत्पन्न होती है। मौसमी बेरोजगारी का मुख्य कारण कृषि की विधियों, भूमि की बनावट, उगाई जाने वाली फसलों आदि के स्वरूप में अन्तर का पाया जाना है। दूसरी ओर मण्डल में प्रच्छन्न बेरोजगारी भी व्यापक स्तर पर पाई जाती है जिसका मुख्य कारण मण्डल के मैदानी क्षेत्रों में श्रम–शक्ति की कृषि पर आवश्यकता से अधिक निर्भरता है। पर्वतीय क्षेत्रों में नाम मात्र की कृषि होती है। यहाँ की कृषि मानसून पर पूर्णतः निर्भर है। अल्प–स्तर के कृषि–कार्यों को परिवार के सदस्य ही सम्पन्न कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में बाहरी व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराना तो दूर, स्वयं परिवार के सदस्य ही वर्ष के अधिकांश समय खाली हाथ रहते हैं।

सन्दर्भः

1- Directorate of Economics and Statistics, Government of Uttarakhand, Dehradun, 2017
2- W.A. Lewis : The Theory of Economic Growth, p-201
3- Colin Clark : The Conditions of Economic Progress, 3rd Edition, Macmillan, London. 1957, p-566
4- Ragnar Nurkse : Problem of Capital Formation in Under-Developed Countries, 1964, p- 2
5- Awasthi Ishwar : Employment in Uttaranchal : ChandraIssues and Challenges, Indian Economic journal, Vol. 53, No.2 2005 pp 55-62
6- Report of National Sample Survey Organization , New Delhi , 25th Round
7- Report of National Commission on Rural Labour, 1991
8- Mehta Balwant : Employment Situation in Uttaranchal, (2006) Indian Economic journal, Vol. 54, New Delhi, India